आजादी की पृष्ठभूमि का परिचयात्मक अध्ययन

डॉ0 किशन यादव,

अध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग व शोध केन्द्र,
बुन्देलखण्ड कॉलेज,झाँसी (उ.प्र.)

किसी भी ऐतिहासिक घटना के पीछे कई कारण होते हैं। जब तक इन कारणों का समुचित अध्ययन न किया जाए, उस घटना के सही संदर्भ का ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता। जब कोई घटना एक घटना मात्र न हो, बल्कि एक आन्दोलन हो, इसके पीछे मात्र कुछ कारण ही नहीं होते बल्कि ये कारण परस्पर इतने उलझे होते हैं कि उनकी व्याख्या करना दुरूह कार्य हो जाता है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव कब और कैसे पड़ी, इन प्रश्नों के उत्तर इस बात पर निर्भर हैं कि हम इस आन्दोलन के किन किन पहलुओं पर विचार कर रहे हैं। ये पहलू राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक यहाँ तक कि नैतिक अथवा धार्मिक भी हो सकते हैं। इस सब पहलुओं की अलग अलग पहचान आवश्यक तो है किन्तु सहज नहीं, इसके अलावा, किसी ऐतिहासिक घटना या आन्दोलन का एक पहलू दूसरे पहलुओं से बिल्कुल भिन्न नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी घटना के घटित होने पर उसका राजनैतिक या केवल आर्थिक या केवल सामाजिक प्रभाव नहीं होता। ये सारे प्रभाव मिलजुल कर प्रकट होते हैं।[1] यही कारण है कि इस घटना या उसके कारणों की व्याख्या बड़ी जटिल हो जाती है। यही बात भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के विषय में भी लागू होती है। अगर हम यह मानकर चलें कि इस आन्दोलन का प्रारंभ 1857 के विद्रोह से हुआ, तो यह पूरी तरह सही नहीं होगा, क्योंकि 1857 के विद्रोह में जो कुछ भी हुआ उसकी जड़ें अतीत के इतिहास में मिलती है। कभी कभी यह माना जाता है कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत 1757 से ही मान लेनी चाहिए क्योंकि 1757 के पलासी के युद्ध के परिणामस्वरूपा अंग्रेज पहली बार एक क्षेत्रीय सत्ता के रूपा में आये और उसी समय से असंतोष की भावना भी प्रकट होने लगी थी, भले ही 1857 के पहले कोई विद्रोह नहीं हुआ। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने 1857 के विद्रोह को सिर्फ एक ''सिपाही विद्रोह'' के रूपा में देखा है और इसके विपरीत कुछ अन्य इतिहासकारों ने इसे भारत के ''प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'' के रूपा में देखा है। इन दोनों विचारधाराओं में एक बड़ा अंश अतिशयोक्ति का है। यह न तो पूर्णतया सिपाही विद्रोह था और न राष्ट्रवादी भावना का स्पष्ट संकेत। 1857 में एक बड़ी घटना घटी, इसमें संदेह नहीं। किन्तु इस वर्ष विशेष को स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत से मान लेना युक्ति संगत नहीं है। वास्तव में किसी भी वर्ष विशेष से हम इस आन्दोलन की शुरूआत नहीं मान सकते। यह एक शनै–शनै विकसित होने वाला आन्दोलन था। क्योंकि यह आन्दोलन ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध था इसका सीधा सम्बन्ध किसी वर्ष विशेष से न मानकर एक घटना विशेष से मानना अधिक उचित होगा। यह घटना थी अंग्रेजों का भारत में आगमन। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास अंग्रेजों के भारत में आने और प्रभुता स्थापित करने से लेकर 1947 तक का पूरा इतिहास है। 1757, 1857, 1885 आदि आदि अनेक वर्ष इस आन्दोलन के विभिन्न पड़ाव थे। इतना अवश्य माना जा सकता है कि ब्रिटिश

सरकार के विरोध में एक व्यापक सशस्त्र विद्रोह 1857 में ही हुआ। सन 1857 को महत्व प्रदान करने का यह तर्क अवश्य हो सकता है कि ''इसी वर्ष से ब्रिटिश भारत सम्बन्धों में राजैनतिक कटुता एक विशिष्ट घटना के रूपा में प्रकट हुई। किन्तु इस कटुता का बीजारोपण पहले के वर्षों में ही हो गया था। 1857 की घटना एक आकस्मिक घटना नहीं थी।''[2] यह तो उस असंतोष की अभिव्यक्ति थी जिसके लक्षण 1779 या सम्भवतः उसके भी पहले मौजूद थे। इस पूरे संदर्भ को समझने के लिए हमें मुगलिया साम्राज्य के अंतिम कुछ वर्षों के इतिहास को दृष्टिगत करना पड़ेगा।

मुगल साम्राज्य भी अंग्रेजी राज्य की तरह एक विदेशी राज्य था। मुगलों ने बल प्रयोग से भारत में प्रवेश किया था। यह मानना सरासर गलत होगा कि भारत की रिआया मुगल बादशाहों के अधीन निर्भय और संतुष्ट थी। भारतीयों ने अपनी नियति से समझौता अवश्य कर लिया था। हॉ, एक बात अवश्य सच है मुगल बादशाहों ने प्रत्यक्ष रूपा से भारत की सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आर्थिक ढॉचे पर प्रहार नहीं किया। उनमें से कई में धार्मिक कटट्रता थी और उन्होंने कभी कभी हिन्दू पक्ष की अवहेलना भी की। किन्तु, इन अपवादों के बावजूद, उन्होंने कभी कभी हिन्दू पक्ष की अवहेलना भी की।[3] किन्तु ,इन अपवादों के बावजदू, उन्होंने आर्थिक शोषण या राजनैतिक दमन का सहारा नहीं लिया। वे विदेशियों की हैसियत से आये थे और यहीं के होकर रह गये। साम्प्रदायिकता किसी न किसी रूपा में मौजूद थी, किन्तु इसका राजनैतिक पहलू करीब–करीब नहीं के बराबर था। हिन्दी कवि तुलसीदास का अकबर के काल में आविर्भाव और संपूर्ण तुलसी साहित्य में लेशमात्र भी मुस्लिम विरोधी भावना का न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

मुगल काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी थी कि मुगलों ने भारत के आर्थिक ढॉचे में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया। 17 वीं शताब्दी तक भारत एक समृद्ध कृषि प्रधान देश था।[4] यहाँ की हस्तकलायें विश्व भर में प्रसिद्ध थीं। कृषि और हस्तकलाओं के संयोग से भारत एक पूर्णतया आत्मनिर्भर देश था। यहाँ की ग्राम प्रधान आर्थिक व्यवस्था, अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल होने की वजह से, बहुत गतिशील न होते हुए भी, देश की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल थी।

किन्तु ज्यों–ज्यों मुगलिया राज्य का पतन होता गया यहाँ की आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे पर भी इसका प्रभाव पड़ता चला गया। औरंगजेव के बाद अगले बावन वर्षों में आठ बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। इस राजनैतिक अस्थिरता के कारण विदेशियों का भारत में प्रवेश एक अनिवार्यता सी हो गई थी। राजनीति तो बिखर रही थी, किन्तु आर्थिक दृष्टि से भारत में अभी भी बहुत कुछ था। इस देश को कच्चे माल का घर माना जाता था। इसी कारण से विदेशी व्यापारियों की आँखें भारत की ओर लगी थी। जब यूरोपीय देशों के कुछ साहसी लोगों ने भारत में प्रवेश के मार्ग की खोज कर ली तो विदेशियों का भारत में आगमन लगभग निश्चित सा हो गया। सबसे पहले पुर्तगाली यहाँ आये, फिर डच, फ्रैंच और अंग्रेज। अंग्रेजों ने अपनी बुद्धिमता तथा कूटनीति से अन्य देशों के लोगों को या तो बाहर चले जाने को मजबूर कर दिया या प्रभावहीन बना दिया। प्रायः यह कहा जाता है कि इन विदेशियों का भारत में आने का मुख्य ध्येय व्यापार करना था, राज्य स्थापित करना नहीं, हो सकता है यह बात सच हो, किन्तु अंग्रेजों के इतिहास से (भारत में उनकी गतिविधियों के संदर्भ में) इस बात के संकेत मिलते हैं कि ब्रिटिश सरकार का ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत जाने की इजाजत देने के पीछे कुछ औपनिवेशिक महत्वाकांक्षायें भी थीं।[5]

बहरहाल, सन् 1599 में अस्सी व्यापारी लंदन में इकट्ठा हुए और उन्होंने भारत में व्यापार करने की बात सोची। उस वक्त मसाले

के व्यापार से विशेष लाभ होने की संभावना थी। मसालों का व्यापार पहले से ही पुर्तगालियों और डचों को आकर्षित कर चुका था। 1617 में अंग्रेजों का एक दूत टामस रो मुगल दरबार में पहुँचा और उसने मुगल बादशाह से व्यापार करने की अनुमति इस शर्त पर प्राप्त की कि अंग्रेज पुर्तगालियों की अवैध गतिविधियों के विरूद्ध वे बादशाह की सहायता करेगें। धीरे–धीरे अंग्रेजों ने अपनी कोठियाँ भारत में स्थापित करना शुरू कर दिया। सर्वप्रथम सूरत, अहमदाबाद, आगरा और भडौंच में कोठियॉ खोली गई।[6] 1668 में बम्बई भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिल गया। इस वक्त तक दक्षिणी भारत में भी कई जगहों पर कोठियाँ खुल चुकी थीं। इनमें मछलीपट्टम विशेष महत्व का था। इसके बाद कम्पनी ने अपना ध्यान उत्तर पूर्वी भारत की ओर दिया। हरिहरपुर और बालासोर में कोठियाँ खुली और फिर कुछ अन्य स्थानों पर।

सन् 1660 के बाद अंग्रेजों ने व्यापारिक लाभ के अलावा राजनैतिक लाभ की ओर भी ध्यान देना शुरू कर दिया। उन्होंने धीरे–धीरे पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी व्यापारियों को तंग करना शुरू कर दिया। इसके लिए वे मुगल शासन से सहायता ले लिया करते थे। धीरे–धीरे कम्पनी के डायरेक्टरों ने सख्ती का रूख अपनाना शुरू किया और मुगल बादशाह भी इसमें बच न सके, 1687 में डायरेक्टरों ने मद्रास केन्द्र की कोठियों के प्रधान को लिखा – ''असैनिक और सैनिक शक्ति का ऐसा शासन कायम कीजिए तथा दोनों की प्राप्ति के लिए इतनी विशाल आय निकालिए और बनाये रखिए जो सदैव के लिए भारत में एक विशाल, सुगठित, सुरक्षित अंग्रेजी राज्य की नींव बन सके।[7] यह भारत में उपनिवेशवाद का पहला संकेत था। अंग्रेजों ने मुगल शासन के अधीन बन्दरगाहों पर घेरा डालना शुरू कर दिया। कई मुगल जहाजों को पकड़ लिया गया और इसी दौरान (1688–89) कुछ हज यात्रियों को बन्दी बना लिया गया। इससे औरंगजेब बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने कुछ सख्त कार्यवाही करने की सोची, किन्तु अंग्रेजों ने, विपरीत परिस्थिति देखकर, मॉफी माँग ली। इसके एवज् में उसने अंग्रेजों को व्यापार के लिए फर्मान भी जारी कर दिया। इन सब घटनाओं से भारतीयों में असंतोष की भावना अवश्य फैली होगी, किन्तु इसके विरूद्ध आवाज उठाने का समय अभी नहीं आया था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों को कई प्रकार की दिक्कतों का सामना भी करना पड़ता था। उनके ऊपर कई कर लगा दिये गये थे और सामान को इधर–उधर ले जाने में परेशानियाँ पेश आती थीं।[8] औंरगजेब तथा अन्य बादशाहों ने उनको कई सुविधायें प्रदान कीं, किन्तु वे उनकी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं के अनुरूपा नहीं थीं। इसलिए अंग्रेजों ने अपनी सहायता खुद करने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

18 वीं शताब्दी के प्रारंभ में बादशाह फर्रूखसियर से अंग्रेजों को बहुत बड़ी मदद मिली। उसने उनको समूचे मुगल राज्य में अबाध व्यापार करने की सुविधा दे दिये गये तो वहाँ के सूबेदार ने इसका विरोध किया, किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।[9] धीरे–धीरे बंगाल में अंग्रेजों की स्थिति मजबूत होने लगी। 1715 तक अंग्रेजों की स्थिति काफी मजबूत हो गई। इन्हीं वर्षों के दौरान अंग्रेजों ने बम्बई, मद्रास आदि स्थानों पर भी अपनी स्थिति में काफी सुधार कर लिया। यही समय था जब अंग्रेजों के औपनिवेशिक इरादों में भी वृद्धि होती चली गई।

अंग्रेजों को पुर्तगाली एवं डच व्याापारिक कम्पनियों से नहीं फ्रांसीसी कम्पनियों से भी निबटना पड़ा। कर्नाटक में तीन युद्ध हुए और अंत में फ्रांसीसियों के हौसले पस्त पड़ गये।

लेकिन अंग्रेजों के लिए मुख्य बात थी बंगाल में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना। 1740 से 1756 तक अलीवर्दी खाँ बंगाल का नवाब था, इसके बाद 1756 में सिराजुदौला बंगाल का नवाब

हो गया। ये नवाब नाममात्र के लिए मुगल बादशाहों के अधीन थे।[10] व्यावहारिक दृष्टि से ये स्वतंत्र थे। अंग्रेजों ने बिना सिराजुदौला की आज्ञा के कलकत्ते की घेराबन्दी शुरू कर दी। इससे सिराजुदौला बहुत नाराज हुआ। दोनों में युद्ध ठन गया। कासिम बाजार में प्रसिद्ध ब्लैक होल की घटना हुई जिसमें 123 अंग्रेज मारे गये। पहले तो अंग्रेज काफी ढीले पड़ गये किन्तु बाद में उन्होंने षडयंत्र का सहारा लिया। उनके षडयंत्र के फलस्वरूप मीरजाफर की गद्दारी के कारण सिराजुद्दौला उनके दुश्मन फ्रांसीसियों के सम्पर्क में आ गया था।[11] मीरजाफर कुछ समय तक सिराजुद्दौला उनके दुश्मन फ्रांसीसियों के सम्पर्क में आ गया था। मीरजाफर कुछ समय तक सिराजुद्दौला का मीरजाफर ने सेना वापस बुला लेने की राय दी। यही उसकी हार का कारण बना। मीरजाफर बंगाल के नवाब घोषित कर दिया गया। सिराजुद्दौला भाग निकला बाद में मीरजाफर के बेटे ने उसकी हत्या कर दी।

प्लासी का युद्ध, जिसमें अंग्रेज विजयी हुए और सिराजुद्दौला मारा गया, एक मामूली सा युद्ध था, किन्तु यह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इसी युद्ध से बंगाल में और फिर सारे भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्त स्थापित हुआ।

प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेज एक राजनीतिक सत्ता के रूपा में उभरकर आये। इनको एक बड़ी सैन्य शक्ति प्राप्त हो गयी। इसकी सहायता से वे फ्रांसीसियों से लड़ने में भी सफल हुए।[12] मीरजाफर अंग्रेजों की कृपा पर पूरी तरह निर्भर हो गया और 1760 में उसे अंग्रेजों को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव के तीन जिले देने पड़े। नवाब अभी भी था, पर दरअसल शासन कर रहे थे अंग्रेज। उन्हें बिना चुंगी दिये व्यापार करने का अधिकार मिल गया।

कुछ समय के लिए अंग्रेज मीरजाफर ने नाराज हो गये और उन्होंने उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बना दिया। वह भी अंग्रेजों से नाराज हो गया। उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से मिलकर अंग्रेजों पर हमला बोल दिया।[13] 1764 में बक्सर का युद्ध हुआ और मीर कासिम की सेना पराजित हो गई। इस युद्ध के फलस्वरूपा अंग्रेजों की शक्ति बंगाल और बिहार में और मजबूत हो गई। मुगल बादशाह और अवध का नवाब अंग्रेजों के संरक्षण में आ गये।

इसके बाद अंग्रेजों ने दक्षिण में मैसूर की ओर ध्यान दिया जहाँ हैदरअली एक शक्तिशाली शासक बन गया था। 1769 में हैदरअली ने अंग्रेजों के खिलाफ विजय हासिल की, किन्तु 1780 के मैसूर युद्ध में हैदरअली पराजित हुआ। हैदरअली के बाद उसके बेटे टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों का वीरता से मुकाबला किया। कई लड़ाइयाँ लड़ने के बाद 1799 में उसकी भी मृत्यु हो गई और मैसूर पर भी अंग्रेजों का आर्थिक आधिपत्य स्थापित हो गया।

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी आकांक्षायें बढ़ती चली गई। जब सन् 1798 में वेलेजली भारत आया उसने सहायक संधि का प्रयोग किया। अब भारत में छोटे छोटे राज्य बन गये थे। उसने उनके संरक्षण के लिए ब्रिटिश सेना तैनात करना शुरू किया। इसके एवज में उसको धन मिलता था। इस प्रकार भारत का समस्त धन विदेशों को जाने लगा। अपनी सेना के माध्यम से अंग्रेज राज्यों में हस्तक्षेप करने लगे और डलहौजी के समय तक राज्यों की सारी शक्ति अंग्रेजों के कब्जे में चली गई।

अब मराठों से निबटने की बारी आई। पेशवा को सहायक संधि करनी पड़ी, लेकिन सिंधिया, होल्कर और भोंसले ने इसका विरोध किया, कई झड़पें हुई।[14] 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक यही हाल चलता रहा, अन्त में मराठों

की शक्ति भी क्षीण हो गई। सन् 1814–16 के दौरान रूहेले और गुरखे भी पराजित हो गये और उत्तर पश्चिम में हिमालय तक अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया। 1824 से 1852 तक आसाम, कछार और मणिपुर कम्पनी के अधिकार आ गये। 1848 से 1852 तक के वर्षों में अंग्रेजों का पंजाब प्रान्त में भी अधिकार हो गया। अंग्रेज भारत की सर्वोत्कृष्ट सत्ता हो गये। अपनी औपनिवेशिक गतिविधियों के दौरान अंग्रेजों ने विलय के सिद्धांत का सहारा लेकर कई राज्यों को हड़प लिया। इस सिद्धांत के प्रयोग से सूरत, सतारा, संभलपुर, उदयपुर, झाँसी, नागपुर आदि का अंग्रेजी राज्य में विलय हो गया। यह प्रक्रिया (जिसके अनुसार अगर किसी राजा या नवाब का स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो तो उसके राज्य का विलय कर लिया जाता था) 1839 से 185 तक कई राज्यों को हड़प चुकी थी।[15] डलहौजी ने अकेले डेढ़ लाल वर्गमील भूमि हड़प ली थी। 1857 तक अंग्रेजों के लिए आर्थिक शोषण का मार्ग पूर्णतया प्रशस्त हो गया।

1857 तक के अंग्रेजी इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य शुरू में तो इंग्लैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था का पोषण करना था और बाद में औद्योगिक क्रांति की आवश्यकताओं को पूरा करना था। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ था इसलिए उन्होंने भारत की परंपरागत आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर डाला।[16] 1757 तक तो व्यापार करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था, किन्तु इसके बाद के वर्षों में भारत से कच्चे माल को इंग्लैंड भेजना उनका उद्देश्य हो गया। यहाँ की कपास बाहर जाने लगी। इंग्लैण्ड की मिलों में इसका कपड़ा बना और इस कपड़े को भारत की मंडियों में ऊँचे–ऊँचे दाम पर बेचा गया। भारत के सूत कातने की प्रक्रिया धीरे–धीरे बन्द होने लगी। करघे और चरखे की आवाश्यकता समाप्त हो गई। कपास और नील जैसी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया गया, किन्तु उनका दाम या तो स्थिर रहा या कम हो गया। किसान तथा काश्तकार गरीब होने लगे।[17] जब यह स्थिति आई तो लोगों ने कपास और नील की खेती बन्द कर दी। जिन्होंने ये धन्धे छोड़े वे कृषि की तरफ चले गये। जमीन पर बोझ बढ़ गया। यह सब एक दिन में नहीं हुआ। यह प्रक्रिया धीरे धीरे चलो और शनैः शनैः भारत की आर्थिक व्यवस्था ध्वस्त होती चली गई।

1757 तक तो स्थिति अधिक भयावह नहीं थी। अंग्रेज कई वस्तुयें भारत से ले जाते थे, किन्तु कई चीजें भारत में लाते भी थे। 1757 के बाद जब वे एक क्षेत्रीय शक्ति हो गये फिर सिर्फ सामान ले जाने का दौर शुरू हुआ। जो कुछ लौट कर आया भी वह बहुत ऊँचे दामों पर प्राप्त होता था। भारत इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति को सफल बनाने का एक साधन मात्र रह गया। ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी को शोषण की पूरी इजाजत दे रखी थी। भारत स्थित ब्रिटिश सत्ता मनमाना कर वसूल करती थी, और भारतीय व्यापारियो को सस्ते दामों पर अपनी चीजें बेचने को मजबूर करती थी।[18] इस प्रकार भारत के व्यापार को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। यह सिलसिला लगभग 1813 तक एक ढर्रे पर चला, उसके बाद मुक्त व्यापार की अनुमति मिलने पर इसका स्वरूपा कुछ बदला। अब तक भारत का व्यापार ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में था अब यह ब्रिटेन के कई पूँजीपतियों के हाथ में चला गया। आर्थिक शोषण की प्रक्रिया और तेज हो गई। इसी का नतीजा भारत में व्यापक असंतोष था, जो धीरे–धीरे एक आन्दोलन के रूपा में प्रकट हुआ। इसका प्रथम लक्षण 1857 में दिखाई दिया। 1857 के विद्रोह का वर्णन आगे किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ में इतना ही समझा लेना काफी होगा कि 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज यह समझ गये थे कि भारत में महज शोषण से अधिक दिन तक काम नहीं चलाया जा सकेगा। उन्होंने भारतीय समाज में फूट डालने का काम शुरू किया और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास करते रहे कि वे जो कुछ कर रहे थे भारत के हित में कर रहे थे।

दूसरी ओर यह भी आवश्यक था कि जिन वस्तुओं को भारत से बाहर भेजा जाता था उनका उत्पादन बढ़ाया जाए। इसके लिए यातायात के साधनों का विस्तार करना आवश्यक था। रेल लाइनें बिछाने, सड़कें बनाने, सिंचाई के साधन जुटाने आदि की तरफ ध्यान देना आवश्यक था।[19] उत्पादन बढ़े और उत्पाद को आसानी से इंग्लैण्ड भेजा जा सके इन साधनों का एकमात्र उद्देश्य यही था। इस प्रकार भारत मे ब्रिटिश पूंजी का निवेश आरम्भ हो गया। इसके लिए बैंकिंग की व्यवस्था की गई और विदेशी कम्पनियों ने अपनी–अपनी वित्तीय एजेंसियॉ भारत में खोलनी शुरू कर दीं। 1880 में बम्बई के प्रशासक स्विर्ड टेंम्पल ने लिखा – ''इंग्लैंड के लिए भारत को अपने अधीन रखना अनिवार्य है क्योंकि ब्रिटिश पूँजी की भारी मात्रा इस देश में केवल इस आश्वासन पर लगाई गई है कि भारत में ब्रिटिश शासन चिरस्थायी रहेगा।''[20] इस प्रकार 19 वीं शताब्दी के अन्त तक भारत पूर्णतया ब्रिटेन का एक महत्वपूर्ण उपनिवेश बन गया। भारत के आर्थिक स्रोतों तथा साधनों का पूर्ण उपयोग ब्रिटेन के लाभ के लिए ही होगा– यह बात पूर्णतया तय हो गई।

क्या इन नयी गतिविधियों का भारत पर कुछ अच्छा प्रभाव भी पड़ा? इसे प्रायः स्वीकार किया जाता है कि अंग्रेजों के प्रभाव से भारत को बाहरी दुनिया से सम्पर्क स्थापित करने में सहायता मिली। नये–नये विचार भारत में आये और यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग में एक नयी चेतना का आविर्भाव हुआ। रेल आदि के विस्तार से अंग्रेजों को जो आर्थिक लाभ हुए वे तो स्पष्ट ही हैं, किन्तु भारतीयों को भी इसके माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थानों को जाने का अवसर मिला और विचारों का आदान प्रदान से एक नयी चेतना का प्रयास हुआ। 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना किसी हद तक इन्हीं विकास प्रक्रियाओं का परिणाम थी। एक ओर तो ब्रिटेन द्वारा भारत में संचालित आर्थिक नीतियों का दबाव और दूसरी ओर विचारों के आदान प्रदान का अवसर इन्हीं के मिश्रित प्रभाव से राष्ट्रीय भावना का जागरण सम्भव हो सका।

यह भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना का एक संक्षिप्त अवलोकन है। एक प्रश्न और रह जाता है। कौन सी ऐसी राजनैतिक अथवा सामाजिक परिस्थितियाँ थी, जिनके दबाव में भारत ने काफी समय तक इस आर्थिक शोषण का सक्रिय प्रतिरोध नहीं किया और कैसे वह ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीति का आसानी से शिकार बन गया? इस संदर्भ में मार्क्स ने लिखा है – ''भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व की स्थापना आखिर हुई कैसे? महान् मुगलों की अधीश्वर सर्वोपरि शक्ति खंडित की मराठों ने।''[21] मराठों की ताकत अफगानों ने खत्म की अैर जब सब एक दूसरे से लड़ रहे थे, तब अंग्रेज आ पड़े और वे सबको दबा सकने में सफल हो सके। देश पहले से ही मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच नहीं बल्कि जनजातियों और जातियों में विभक्त था। यह समाज ऐसे संतुलन पर आश्रित था जिसका आधार था सदस्यों का पारस्परिक विकर्षण और वैधानिक पार्थक्य। ऐसा देश और ऐसा समाज तो मानो विजय का पूर्व निश्चित लक्ष्य था। इसी संदर्भ में ए.आर. देसाई लिखतें हैं। – ''पूंजीवादी राष्ट्र में देशभक्ति और राष्ट्रवाद का बड़ा गहन भाव होता है। सामंती जन समुदाय भौतिक रूपा से असंबद्ध, सामाजिक तौर पर असंयुक्त और राजनीतिक तौर पर असंपृक्त होता है। इसमें रंचमात्र भी आश्चर्य नहीं कि पूँजीवादी ब्रिटेन ने असंयुक्त सामंती भारत पर आसानी से विजय हासिल कर ली। भारत की राजनैतिक स्थितियों ने ही अंग्रेजों का भारत में प्रवेश संभव बनाया।[22]

यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि एक सहस्त्रों मूल दूर आई हुई व्यापारिक कम्पनी ने भारत जैसे विशाल देश पर राजनीतिक प्रभुत्व जमा लिया। अंग्रेजों को किसी बड़े युद्ध या आक्रमण का सहारा लिये बिना इतनी बड़ी

सफलता कैसी मिली ? विश्व के इतिहास में कोई ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। जब भी एक देश ने दूसरे देश पर अधिकार जमाने की कोशिश की उसे युद्ध का सहारा लेना पड़ा है। कम्पनी ने अपने प्रारम्भिक दिनों में कुछ युद्ध किये, लेकिन इसमें भारत की केन्द्रीय शक्ति निरपेक्ष बनी रही, बल्कि कम्पनी को एक के बाद एक सुविधा देती रही। मुगल बादशाहों के अधीन जितने भी महाराजा या नवाव थे वे अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा में ही लगे रहे। राष्ट्रीयता की भावना का पूर्णतया अभाव था। राजे महाराजे तथा नवाब आपस में ही लड़ते रहते थे। जब भारत में पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापार करने लगे तब भारत के सामंत तथा नवाब, विदेशियों की सहायता से, आपसी झगड़ों में उलझते चले गये। उनको कभी इस बात का अहसास नहीं हुआ कि आत्म सुरक्षा का सबसे अच्छा साधन आपसी एकता है। अगर इन लोगों ने अपनी सम्मिलित राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया होता तो विदेशी भारत में राजनीतिक साँठ गाँठ करने की हिम्मत न करते।[23] जहाँ एक ओर अंग्रेजों ने क्लाइव जैसे बुद्धिमान तथा हिम्मती नेता के अधीन एक सुनियोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य किया, वहीं भारतीय राजाओं तथा नवाबों ने राजनीतिक सूझबूझ का कोई परिचय नहीं दिया, बंगाल के नवाबों की गतिविधियॉ इस तथ्य का बससे बड़ा प्रमाण है। बंगाल संवैधानिक रूपा से मुगल साम्राज्य का ही एक हिस्सा था, किन्तु मुगल बादशाह ने बंगाल की समुचित सुरक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

यह तो हुई ब्रिटिश प्रभुत्व के प्रारम्भिक दिनों की बात। बाद के वर्षों में भी लगभग इसी बात की पुनरावृत्ति हुई। मुगल साम्राज्य 19 वीं शताब्दी के मध्य तक किसी न किसी रूप में भारत में वर्तमान रहा। इस वक्त तक देश में सामन्तवाद अपनी जड़ें जमा चुका था। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक गतिविधियों से भारत की सामान्तवादी शक्तियों को अपनी ओर मिलाये रखा, 1857 में एक अवसर ऐसा आया था जब अगर भारतीय सामंतों तथा नवाबों में कुछ भी एकता की भावना होती तो ब्रिटिश शासन को उखाड़ा जा सकता था। किन्तु अंग्रेजों ने सामंतों की स्वार्थपरता का पूरा लाभ उठाया। वे 1857 की क्रांति को पूरी तरह खत्म करने में सफल हो गये। इसके बाद के दिन अंग्रेजों के लिए काफी मुश्किल साबित हुए, किन्तु वे अपनी आर्थिक शोषण की नीति को बरकरार रखने में सफल हुए। इस शोषण का अन्त 1947 में ही हो सका।

वास्तविकता तो यह है कि ब्रिटिश राज के साम्राज्यवादी मन्सूबों के पीछे राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की भावना तो थी ही इसके अलावा उनका मुख्य उद्देश्य था आर्थिक शोषण। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि वे भारत में एक व्यापारिक कम्पनी के रूपा में ओय। ब्रिटिश राज के प्रारंभिक वर्षों में तो भारतीयों की समझ में यह बात ठीक से नहीं आई थी। मुगल शासक भी शायद यही समझते रहे थे कि अंग्रेजों का आगमन आर्थिक समृद्धि के द्वार खोलेगा। यह बात ठीक से समझ में नहीं आ सकी थी कि उनका उद्देश्य भारत को आर्थिक समृद्धि प्रदान करना नहीं था[24] बल्कि उसकी परंपरागत आर्थिक व्यवस्था को नष्ट करके भारत के धन को बाहर पहुॅचाना था। जब भी अंग्रेजी सरकार ने राजनीतिक हथकंड़ों का प्रयोग किया उनका एकमात्र उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को छिन्न भिन्न करना था। यहाँ तक कि संवैधानिक सुधारों की भी आवश्यकता इसलिए महसूस की गई ताकि आर्थिक शोषण को सरल बनाया जा सके और कानून की दुहाई भी दी जा सके।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक पहलु कई वर्षों तक भारत के लोगों की समझ में नहीं आ सका। किन्तु 1857 की क्रांति के बाद, खासकर कांग्रेस की स्थापना के बाद, ब्रिटिश राज के आर्थिक षडयंत्र का अहसास हमारे नेताओं तथा बुद्धिजीवियों को होने लगा था। यह एक

अत्यन्त सुखद संयोग था कि स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक दिनों के नेता अर्थशास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता भी थे। प्रारंभ के नेताओं में कम से कम दो व्यक्ति ऐसे थे जो ब्रिटिश राज द्वारा थोपे गये उपनिवेशवाद के आर्थिक पहलू को गहराई से समझते थे। ये नेता थे दादाभाई नौरोजी और महादेव गोविन्द रानाडे।

दादाभाई नौरोजी स्वयं एक सफल व्यापारी थे और व्यापार में काम आने वाले हथकंडो की समझ रखते थे। वे पूरी तरह यह समझ चुके थे कि अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य भारत का आधुनिकीकरण नहीं बल्कि आर्थिक शोषण है। उनके अनुसार इस शोषण का माध्यम था देश के साधनों का निर्गम। उन्होंने कहा– ''जब तक इस विनाशकारी निर्गम को रोका नहीं जाता और भारतीयों को अपने देश में अपने प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग नहीं करने दिया जाता तब तक इस देश के उद्धार की कोई आशा नहीं है।'' निर्गम की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए नौरोजी ने लिखा–

''इस निर्गम में दो रकमें सम्मिलित हैं: पहली तो यूरोपीय अधिकारियों की बचत की रकम जिसे वे इंगलैड भेजते हैं और इंगलैड तथा भारत में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और दूसरी, गैर सरकारी यूरोपीयों द्वारा भेजी गई इसी बचत की रकम।[25] चूंकि इस निर्गम के कारण भारत में पूंजी का संचय नहीं हो पाता, इसलिए जिस धन को अंग्रेज यहॉ से खसोट कर ले जाते हैं उसे पूंजी के रूप में भारत में वापस ले आते हैं और इस प्रकार व्यापार तथा मुख्य उद्योगों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। इसके द्वारा वे भारत का और अधिक शोषण करते हैं और अधिक धन भारत से बाहर ले जाते हैं। अन्त में, सरकारी तौर पर धन का निर्गम ही सारी बुराईयों की जड़ हैं।''

दादाभाई नौरोजी ने स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक काल में ही जिस आर्थिक अन्वेषण का इतना गहन ज्ञान प्रदान किया वह वास्तव में उनकी अद्वितीय प्रतिभा का प्रमाण था। इसप्रकार के विचारों का प्रमाण रानाडे की कृतियों तथा भाषणों से भी मिलते हैं। उन्होंने आर्थिक सिद्धांतों के सामाजिक पहलुओं का अध्ययन किया और यह साबित किया कि अंग्रेजों ने जिन आर्थिक सिद्धांतों को भारत में लागू किया है वे वास्तव में भारत की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। वे निर्गम के प्रश्न पर नैरोजी के विचारों से सहमत नहीं थे।[26] वे सिर्फ यह चाहते थे कि देश में उपलब्ध धन का विकेन्द्रीकरण किया जाए। उनका तात्पर्य यह था कि देश का आर्थिक विकास केवल कुछ केन्द्रों पर ही सीमित न रहे बल्कि इसका लाभ सारे देश को पहुॅचे।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषणों में भी इसी तथ्य की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। वे नौरोजी की ही भाँति भारतीय धन के निर्गम से दुखी थे, किन्तु वे यह भी चाहते थे कि अंग्रेजों का सीधा विरोध करने से अधिक अच्छा यह होगा कि उनकी आर्थिक नीतियों को समझा जाए और उनसे उन नीतियों में सुधार करने को कहा जाय जिन नीतियों के प्रभाव से भारत की अर्थ व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का सबसे गहरा असर भारत के औद्योगीकरण पर पड़ा। अपनी राजनीतिक जड़ें जमा लेने के बाद अंग्रेजी सरकार ने भारत के औद्योगीकरण की शुरूआत तो अवश्य की, किन्तु जितने भी उद्योग शुरू किए गये उनमें लगभग सारी की सारी पूँजी विदेश की ही लगाई गई। भारत के हित में तो यह होता कि भारत की ही पूँजी भारतीय उद्योगों में लगाई जाती। इस प्रक्रिया से भारत की पूँजी का बाहर जाना रूक सकता था। किन्तु, स्पष्ट है कि अंग्रेजी शासन की नीति भारत की उन्नति करना नहीं था। उसका एकमात्र उद्देश्य था भारत से

अधिक से अधिक धन इग्लैंड ले जाना, ताकि वहाँ की औद्योगिक क्रांति में इसका समुचित निवेश किया जा सके। यह एक बहुत गहरी चाल थी, किन्तु हमारे नेताओं को इसका पूरा अहसास था 1901 में विपिनचन्द्र पाल ने लिखा था–

''देश के संसाधनों के दोहन में विदेशी पूँजी, ज्यादातर ब्रिटिश पूँजी के इस्तेमाल से कोई मदद के बजाय दरअसल हुआ यह कि यह भारतीय जनता की आर्थिक दशा सुधारने में सबसे बड़ी बाधा बन गई है। यह जिस हद तक आर्थिक खतरा है, उसी हद तक एक आर्थिक राजनीतिक खतरा भी है, और जितनी जल्दी हम इस दुहरी बुराई को उखाड़ सकें, उतना ही हमारे भविष्य के लिए अच्छा होगा,'' [27]

इसी समझ का नतीजा था कि हमारे नेता स्वतंत्रता आन्दोलन को आर्थिक परिवेश में समझने का प्रयत्न कर रहे थे। उस वक्त के अखबारों ने भी इस समस्या की ओर ध्यान दिया था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद का एक भयानक प्रभाव यह पड़ा कि भारत की समृद्ध दस्तकारी का तेजी से ह्रास होने लगा। भारत में आने और भारत से बाहर जाने वाले माल की मात्रा तथा कीमत में तो अवश्य बढ़ोत्तरी हो रही थी, किन्तु इस नई आयात–निर्यात नीति का अपना स्वरूपा ऐसा था कि यहाँ की दस्तकारी का महत्व ही समाप्त हो गया। दस्तकारी में जिस कच्चे मालका उपयोग होता है वह बाहर जाने लगा और वहाँ से रूपांतरित होकर, कई गुना ज्यादा कीमत पर, फिर भारत आने लगा। जो दाम भारत के व्यापारियों को दिए गए उनसे कई गुना ज्यादा दाम भारत में खरीददारों को विदेशी व्यापारियों को चुकाने पड़ते थे, जिसे व्यापारिक संतुलन कहा जाता है उसका लेश मात्र भी नहीं था। यह केवल शोषण का ही एक तरीका था। जिसको अंग्रेजों ने मुक्त व्यापार नीति की संज्ञा दी वह महज एक शोषण प्रक्रिया थी। अपने इतिहास में श्री आर.सी.दत्त ने इसी समस्या को उजागर किया। दादाभाई नौरोजी तथा उनके बाद के कई नेताओं ने इस समस्या पर प्रकाश डाला। गाँधी तक आते आते तो सबसे मुख्य बात जो बार बार दुहराई जाती थी वह यही थी कि भारतीय धन सम्पदा की निकासी को तुरंत बन्द किया गया। धीरे–धीरे जन साधारण ने भी इस बात को समझ लिया और अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति का खुला विरोध करना शुरू कर दिया। यही कारण था कि गाँधीको जनता का इतना विस्तृत समर्थन मिला।[28] जब लोगों की समझ में यह बात आने लगी तो उन्हें इस बात का पूरा अहसास होगया कि जब तक अंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता को न उखाड़ फेका जायेगा तब तक भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आ सकता। इस प्रकार आर्थिक प्रश्न और राजनीतिक प्रश्न एक दूसरे से जुड़ गये। यह हमारे प्रारंभिक नेताओं की सूझबूझ का परिणाम था। अगर वे भारत की राजनीतिक समस्याओं को आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में न देख पाते तो उनको न तो वस्तु स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकने की क्षमता प्राप्त होती और न ही जन साधारण का समर्थन प्राप्त हो सकता। बिना जन समर्थन के इतने विशद आन्दोलन को सही ढ़ंग से संचालित नहीं किया जा सकता था, इस तथ्य को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की एक महान उपलब्धि माना जाना चाहिए।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम महजएक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था। यह वास्तव में ब्रिटिशराज के समूचेउपनिवेशवादी तंत्र के विरोध में चलाया गया आन्दोलन था।

संदर्भ सूची

1. डॉ. सीताराम– भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की रूपरेखा, पृ. 44.
2. डॉ. सुभाष कश्यप– स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 19.
3. वही, पृ. 21

4. वही पृ. 57
5. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 69
6. वही, पृ. 72
7. वही, पृ. 87
8. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 7
9. वही, पृ. 11
10. वही, पृ. 13
11. वही, पृ. 17
12. डॉ. के.सी. जैन– भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधानिक विकास, पृ.12
13. वही, पृ. 17
14. वही पृ. 29
15. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 13
16. वही, 42
17. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 109
18. वही, पृ. 121.
19. वही, पृ. 138
20. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 24
21. वही, पृ. 26
22. वही, पृ. 35
23. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 129
24. वही, पृ. 135
25. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 55
26. वही, पृ. 59
27. वही, पृ. 75

Copyright © 2017, Dr. Kishan Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.